IJARSCT
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
ISSN: 2581-9429
Volume 6, Issue 7, June 2026
Impact Factor: 8.2

# सुर्खियों में बेआवाज: हिंदी और तमिल फिल्मों में दलित प्रतिनिधित्व का समीक्षात्मक विश्लेषण

**सुभाष भिमराव दोंदे**
प्रभाग प्रमुख, जंतु विज्ञान प्रभाग,
किर्ती कॉलेज (स्वायत्त), दादर (प.), मुंबई- 400 028. भारत

***सारांश:***
*जातिव्यवस्था पे सीधे और स्पष्ट रूप से कथन करने में तमिल सिनेमा हिंदी सिनेमा से कई अधिक पुरोगामी साबित हुआ है, क्योंकि यह दबे-कुचले लोगों के अनुभवों पर ज़ोर देता है और सामाजिक सच्चाइयों का सीधे सामना करता है। असली दलित कहानियों को प्राथमिकता देते हुए यह जाति पर आधारित ज़ुल्म, हिंसा और ऊंच-नीच से बचने के बजाय उसका सामना करता हैं। जहाँ हिंदी सिनेमा ने पहले से ही जाति को या तो नज़रअंदाज़ किया है या ऊँची जाती के दर्शकों को आहत ना हो इस पलायनवादी नजरिए से दिखाया है, वहीं तमिल सिनेमा ने – जो फ़िल्म बनाने वालों की नई लहर से आगे बढ़ रहा है – पिछडों के नज़रिए को तेज़ी से आगे और मुख्यधारा बनाया है। तमिलनाडु के सामाजिक- राजनीतिक इतिहास में द्रविड़ आंदोलन और अम्बेडकरी राजनीति का पुनरुद्धार, तमिल सिनेमा में जातिगत असमानता पर चर्चा करने के लिए एक उपजाऊ आधार प्रदान करता है। तमिल सिनेमा हाशिये पर स्थित पिछडों के अनुभवों और जीवन को मुख्यधारा बनाने की अनुमति देता है; जो प्रचलित जातिव्यवस्था से सबसे अधिक प्रभावित होते हैं, और उनके मुद्दों के कथन को एक निष्क्रिय चित्रण से सच्चे सक्रिय प्रतिरोध में बदल देता है। इस पृष्ठभूमि प्रस्तुत शोधपत्र दलितों की कथानकों या आवाज़ को मुख्य धारा बनाकर फिल्मों का निर्माण करने में हिंदी सिनेमा नाकाम क्यूँ है? और तमिल सिनेमा किस तरह आगे है? इसका समीक्षात्मक विश्लेषण प्रदान करता है।*

***कुंजी शब्द:*** *जातिव्यवस्था, बेआवाज, दलित, हिंदी सिनेमा, तमिल सिनेमा, द्रविड़ आंदोलन*

## I. प्रस्तावना

फ़िल्में सामाजिक दर्पण के रूप में कार्य करती हैं, जिस प्रकार वे उस युग की प्रचलित सोच, मूल्यों और चिंताओं को दर्शाती हैं जिसमें वे निर्मित होती हैं। वे केवल प्रतिबिंबित करने से कहीं अधिक करती हैं; वे अक्सर एक द्विदिशात्मक प्रतिपृष्टि परिपथ में कार्य करती हैं, जहाँ समाज पर्दे (स्क्रीन) को प्रभावित करता है और पर्दा बदले में, जनता की धारणा और व्यवहार को आकार देती है। इसके बावजूद फिल्में वास्तविकता को पूरी तरह से प्रतिबिंबित नहीं करतीं; वे अक्सर व्यावसायिक या वाणिज्यिक कारकों और उनके निर्माताओं के व्यक्तिगत दृष्टिकोण से प्रभावित होती हैं। कुछ फिल्में तो कभी-कभी जटिल मुद्दों को अत्यधिक सरल एवं घिसा-पिटा बना देती हैं। जहाँ कुछ फिल्में बेहद यथार्थवादी होती हैं- जो अक्सर सामाजिक असमानताओं और संघर्षों को उजागर करती हैं, वहीं

कुछ अन्य फिल्में पूर्ण पलायन का अवसर प्रदान करती हैं, एक काल्पनिक दुनिया का निर्माण करती हैं जो दर्शक की वास्तविकता से मेल नहीं खा सकती है। बेआवाज दलितों और पिछड़ों पर बनी हिंदी और तमिल फिंल्मों में इस तरह का विरोधाभास स्पष्ट दिखता है।

## II. परिकल्पना

तमिल सिनेमा के बिल्कुल विपरीत, 'जातिगत वर्चस्व' हिंदी सिनेमा के परिदृश्य को प्रमुखता से आकार देता है, जो उच्च जाति समूहों के दृष्टिकोण और मूल्यों को प्रतिबिंबित करने के लिए कथाओं, चरित्र चित्रण और सिनेमा निर्माण को निर्धारित करता रहा है। तमिल सिनेमा प्रचलित जातिव्यवस्था से सबसे अधिक प्रभावित और हाशिये पर स्थित पिछडों के अनुभवों और जीवन को मुख्यधारा बनाते हुए उनके मुद्दों के कथन को एक निष्क्रिय चित्रण से सच्चे सक्रिय प्रतिरोध में बदल देता है।

## III. क्रिया-विधि

गुणात्मक अनुसंधान मुख्य रूप से मानवीय अनुभव पर आधारित होता हैं, जिसमें परिवर्ती राशि को परिमाणित किए बिना धारणाओं और सैद्धांतिक जानकारी का उपयोग किया जाता है। इस पृष्ठभूमि में प्रस्तुत लेख गुणात्मक विषय-वस्तु विश्लेषण के दायरे में असंरचित और गैर-संख्यात्मक डेटा पर निर्भर रहकर समस्या के सटीक स्वरूप को हल करने के लिए इस क्षेत्र के विशेषज्ञों एवं अनुसंधान कर्ताओं के संदर्भ सूचीबद्ध प्राथमिक एवं प्रकाशित साहित्य या डेटा का एक समीक्षात्मक विश्लेषण है।

## IV. विचार विमर्श

### 1. हिंदी सिनेमा: जाति-विरोधी आख्यानों को मुख्यधारा बनाने में असफल

हिंदी सिनेमा या बॉलीवुड भारत का प्रमुख फिल्म उद्योग है; जहाँ हर साल लगभग 340 हिंदी फिल्में बनाती है। स्वतंत्रता से अबतक बॉलीवुड ने एक लंबा सफर तय किया है और विभिन्न विषयों पर कई फिल्में बनाई हैं, जिनमें गरीबी, आर्थिक असमानता, भारत-पाकिस्तान विभाजन, जाति व्यवस्था, श्रमिक संघ, बाल विवाह, दहेज प्रथा और कई अन्य शामिल हैं। कला के किसी भी अन्य रूप की तरह, सिनेमा का भी अपने समाज के साथ द्विपक्षीय संबंध है, जो एक-दूसरे को समान रूप से प्रभावित करते हैं। ऐसा ही एक सामाजिक मुद्दा जिसने भारतीय समाज को सर्वत्र और सदा प्रभावित किया है, वह है जाति व्यवस्था। जाति व्यवस्था के परिपेक्ष्य में हिंदी फ़िल्मों के विश्लेषण से पता चलता कि ज़्यादातर प्रमुख पात्र या मुख्य किरदार के कुलनाम दबंग जातियों के रहते है, और किरदारों को पारंपरिक जाति-आधारित कामों के हिसाब से दिखाया जाता है। इसके अलावा, चरित्रचित्रण में दबंग जाति के मूल्यों के अनुसार स्थापित किया जाता है और उसे बनाए रखा जाता है। मुख्यधारा सिनेमा में दलितों और पिछडों की कहानियों को नज़रअंदाज़ किया गया है। उनके साथ जुड़ी निम्नवर्गीयता को जानबूझकर छिपाया गया है, और इन जातियों को सिनेमा में दिखाने के लायक नहीं माना गया है।

मुख्यधारा का हिंदी सिनेमा में 'मसाला फिल्मों का बोलबाला है, जो असल सामाजिक मुद्दों के बजाय पलायनवादी मनोरंजन, भव्य रोमांस और एक्शन को ज़्यादा अहमियत देती हैं। निर्माता ऐसी मनहूस और कुरूप या मटमैली कहानियों वाली फिल्मों को सहारा देने से हिचकिचाते हैं; जिनमें जातिगत हिंसा या व्यवस्थागत भेदभाव दिखाया गया हो, क्योंकि उन्हें डर है कि उनमें 'वाणिज्यिक व्यवहार्यता' नहीं होगी और वे ज़्यादा दर्शकों को को आकर्षित नहीं कर पाएंगी। हिंदी फिल्म उद्योग पर

ज़्यादातर उच्ची जाती के निर्माता और दिग्दर्शकों का नियंत्रण है, जिससे ऐसी कहानियाँ बनती हैं; जो पिछड़े लोगों के बजाय उनके खुद के अनुभव, उम्मीदें और नज़रिए को दिखाती हैं। दलित-बहुजन-आदिवासी समुदायों की कथाओं को अक्सर नज़रअंदाज़ कर दिया जाता है। जब उन्हें दिखाया जाता है, तो उन्हें अक्सर घिसे-पिटे रूढ़िबद्ध चरित्रों तक ही सीमित रखा जाता है, जैसे कि उन्हें सशक्त लोगों के बजाय गरीब, आज्ञाकारी, दबे-कुचले या पीड़ित के रूप में दिखाया जाता है।

मुख्यधारा फिल्में अक्सर जाति रहित शहरी जगह पर चलती हैं, और व्यावसायिक और सामाजिक जगहों पर मौजूद जातिवाद को मानने से इनकार करती हैं। बॉलीवुड में पिछड़े समुदायों के अभिनेता, कथा लेखक और फिल्म निर्माताओं की बहुत कमी है। कैमरे के पीछे प्रतिनिधित्व की इस कमी का मतलब है कि उनकी कहानियों को असल में बताने वाला कोई नहीं है। जब मुख्यधारा की फिल्में जाति को संबोधित करती हैं (जैसे, अनुच्छेद Article-15), तो वे अक्सर कहानी को उच्च जाति के शहरी नायक पर केंद्रित करते हैं जो हाशिए पर स्थित, दबे-कुचले लोगों के लिए 'उद्धारकर्ता' के रूप में कार्य करता है। इसके बजाय ग्रामीण इलाके के निम्न जाती के नायक की भूमिका को 'उद्धारकर्ता' के रूप में क्यूँ नही दिखाया जाता? सामाजिक मुद्दों पर आख्यान करते समय भी, मुख्यधारा का सिनेमा गहरी जड़ें जमा चुकी जाति व्यवस्था से सीधे टकराव के बजाय गांधीवादी समाधान देना या वर्ग के झगड़ों पर ध्यान देना पसंद करता है। यहाँ गांधीवादी समाधान का मतलब हिंसा या बल प्रयोग के बिना, सत्य और अहिंसा के मार्ग से किसी भी समस्या, संघर्ष या विवाद का स्थायी और नैतिक हल खोजना है। हिंदी फिल्मोद्योग उन विषयों का पता लगाने में हिचकिचाता है जो बहुसंख्यकों के बीच असहजता पैदा कर सकते हैं, वे चुनौती देने के बजाय मौजूदा सामाजिक पदानुक्रमों को मजबूत करना पसंद करते हैं।

### 2. तमिल सिनेमा: स्पष्ट जाति-विरोधी आख्यानों की ओर बदलाव

हाल के रूझानों के आधार पर, तमिल सिनेमा को जाति-आधारित भेदभाव को सक्रिय रूप से संबोधित करने या चुनौती देने, उसे चित्रित करके पर्दे पर दिखाने में कोई परहेज नही है और इस मामले में वो हिंदी सिनेमा से कई गुना आगे है। हालांकि दोनों उद्योगों ने पहले से ही 'जातिगत चेतना' या यूं कहें 'अपनी जाति के प्रति जागरूक समाज' में काम किया है, लेकिन पिछले दस सालों में तमिल सिनेमा ने दलितों की ज़िंदगी और जाति-विरोधी कहानियों को साफ़-सुफरे रूप में, जैसा है वैसे मूल वास्तविक या प्राकृतिक और मुख्यधारा सिनेमा के रूप में दिखाना शुरू कर दिया है, जबकि हिंदी सिनेमा अक्सर इस मुद्दे को कहानी अप्रिय हिस्सा मानकर उसे काट-छाँट करने, छिपाने या टालने की कोशिश करता है, और अक्सर दलितों की कथानकों या आवाज़ को मुख्य धारा बनाकर फिल्मों का निर्माण करने में नाकाम रहता है। इस क्षेत्र में तमिल सिनेमा किस तरह आगे है, इसका विश्लेषण यहाँ दिया गया है:

पा. रंजीथ (मद्रास, कबाली, काला), मारी सेल्वराज (परियेरुम पेरुमल, कर्णन) और वेत्रिमारन (असुरन) जैसे निर्देशकों ने जाति को उप-कथानक के बजाय एक स्पष्ट केंद्र-बिंदु और मुख्य धारा बनाकर परिदृश्य को बदल दिया है। मारी सेल्वराज का 'परियेरुम पेरुमल (2018), विशेष रूप से, दलित समुदाय के आघात और प्रणालीगत उत्पीड़न को उजागर करने के लिए एक मानदण्ड या बेंचमार्क माना जाता है। हाल की तमिल फ़िल्में ज़्यादातर 'जीवित अनुभवों' और दबे-कुचले अधिकारहीन समुदायों की आवाज़ों से चलती हैं, न कि निचली जाति के मुद्दों से जूझ रहे ऊँची जाति के किरदारों पर। बॉलीवुड ने सामाजिक मुद्दों की सतही तौर पर बात तो की है, लेकिन अक्सर जाति से सीधे जुड़ने से बचता है, या इसे रूमानी या रोमँटिक नज़रिए से दिखाता है।

ISSN: 2581-9429
Volume 6, Issue 7, June 2026
Impact Factor: 8.2

जाति से जुड़ी क्षेत्रीय या भाषिक फ़िल्मों जैसे मराठी फ़िल्म 'सैराट' को हिंदी में 'धड़क' का रूप में पुनर्निर्माण करते समय, बॉलीवुड की आलोचना जाति के पहलू को कमज़ोर करने और इसे एक सख्त जाति के मुद्दे के बजाय एक आम वर्ग-आधारित संघर्ष में बदलने के लिए की गई है। इसलिये मुख्यधारा के हिंदी सिनेमा की अक्सर दलितों और आदिवासियों के जीवित अनुभवों को दिखाने में नाकाम रहने के लिए आलोचना की जाती है। दूसरी ओर 2013-2014 के एक सर्वेक्षण से पता चला कि बॉलीवुड में मुख्य किरदारों का बहुत छोटा हिस्सा ही पिछड़ी जातियों का है।

सांस्कृतिक और राजनीतिक संदर्भ के परिपेक्ष्य में किसी भी भाषा की फिल्में उस समाज की परंपराओं, सांस्कृतिक मूल्यों और शासन प्रणालियों, विचारधाराओं व राजनीतिक शक्ति संरचनाओं के उस परिवेश को दर्शाती है, जो व्यवहार, विचारों और घटनाओं को प्रभावित करते हैं। इस पृष्ठभूमि में तमिल फिल्में हिंदी फिल्मों से अलग क्यूँ है? इस स्थिति को समझने का ढांचा प्रदान करती है। तमिलनाडु का इतिहास गवाह है- की द्रविड़ आंदोलन के असर ने, जो ऐतिहासिक रूप से जाति-विरोधी रहा है और ब्राह्मणवादी दबदबे को चुनौती दी है, आम जनता में जाति पर चर्चा करने के लिए ज़्यादा खुला (हालांकि पूरी तरह से भेदभाव से मुक्त नहीं) माहौल बनाया है, जो आज तमिल फिल्मों में दिखता है। तमिलनाडु में द्रविड़ आंदोलन एक सौ साल पुराना सामाजिक-राजनीतिक सुधार आंदोलन है; जो 20वीं सदी की शुरुआत में ब्राह्मणवादी दबदबे, जातिगत भेदभाव को चुनौती देने के लिए शुरू हुआ था। यह आंदोलन सामाजिक समता, तर्कसंगतता बढ़ाने और जाति व्यवस्था को खत्म करने के सिद्धांतों पर आधारित है; जो उत्तर भारतीय या आर्य सांस्कृतिक दबदबे से अलग, एक खास द्रविड़ पहचान पर ज़ोर देता है।

मद्रास प्रेसीडेंसी की शिक्षा और प्रशासन में ब्राह्मणों के ज़्यादा प्रतिनिधित्व का मुकाबला करने के लिए शुरू की गई गैर-ब्राह्मण आंदोलन और जस्टिस पार्टी की औपचारिक स्थापना 1916 में हुई। यह आगे जाकर पेरियार के आत्म-सम्मान आंदोलन के माध्यम से एक शक्तिशाली राजनीतिक ताकत के रूप में विकसित हुआ, जिससे ऐसें क्षेत्रीय दलों का प्रभुत्व बना, जो सामाजिक न्याय, सकारात्मक कार्रवाई और क्षेत्रीय स्वायत्तता पर ध्यान केंद्रित करते थे। पा. रंजीथ जैसे तमिल फिल्म निर्माताओं ने कहा है कि जाति से निपटने के लिए उन्हें सेंसर बोर्ड से बहुत ज़्यादा बल या दबाव का सामना करना पड़ता है, फिर भी वे अपने संघर्षमय प्रयासों सीमओं तक को आगे बढ़ाते या खिंचते रहते हैं, जबकि बॉलीवुड में, सुरक्षित और वाणिज्यिक सफलता मुद्दों के विषय अक्सर पहले आते हैं। संक्षिप्त में तमिल सिनेमा एक ऐसे दौर में पहुंच गया है, जहां भेदभाव का सामना करता और हाशिये पर स्थित 'उपाश्रित' अब नायक है, जो जातिगत भेदभाव की कड़वी सच्चाई को मुख्यधारा के वाणिज्यिक सिनेमा में सबसे आगे ला रहा है, जबकि बॉलीवुड को आम तौर पर जाति को साफ तौर पर दिखाने में ज़्यादा हिचकिचाहट या असहज माना जाता है।

बॉलीवुड ने दलितों, बहुजनों और आदिवासियों के बहिष्कार, भेदभाव, दर्दनाक जीवन और आशा-आकांक्षाओं को पकड़कर उसे मुख्यधारा में लाने के लिए कभी भी पर्याप्त प्रयास नहीं किया है। यहाँ तक कि बॉलीवुड पुनर्निर्माण संस्कृति भी कुछ मूल भाषिक फिल्में जैसे की मराठी में नागराज मंजुले की 'फैंड्री' और 'सैराट' और तमिल में, सेल्वाराज के 'कर्णन' और वेत्रिमारन के 'असुरन' जैसे क्षेत्रीय सिनेमा में जाति के कुछ सबसे स्पष्ट चित्रणों का पुनर्निर्माण बनाने में विफल रहा और यहाँ तक कि जब इसने 'धड़क' के रूप में 'सैराट' का पुनर्निर्माण किया, तो इसने बिना किसी खेद के कहानी के जाति पक्ष को छोड़ दिया और कहानी को प्रमुख उच्च जाति के हिंदुओं के उपभोग के लिए बेच दिया।

तमिल सिनेमा सामाजिक आलोचना और सांस्कृतिक प्रतिरोध का एक मज़बूत ज़रिया है। यह सिर्फ़ मनोरंजन के लिए नहीं है, बल्कि समाज को शिक्षित करने, जागरूक करने और एकजुट करने में भी अहम भूमिका निभाता है। तमील फ़िल्म इंडस्ट्री

IJARSCT
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
ISSN: 2581-9429
Volume 6, Issue 7, June 2026
Impact Factor: 8.2

असल ज़िंदगी की घटनाओं जैसे कि हाशिए पर पड़े समुदायों के संघर्षों को दिखाती है। मारी सेल्वराज की 'कर्णन' फ़िल्म खास तौर पर, दबे-कुचले लोगों की फिल्मी आवाज़ बन जाती हैं, जो एक आम तौर पर असमान दुनिया में अवकाश या स्पेस, सम्मान और न्याय के लिए मिलकर लड़ने की भावना को दिखाते हैं। सिर्फ़ बगावत की कहानी से कहीं ज़्यादा, कर्णन एक ज़बरदस्त सिनेमाई बहस है; जो सोच के नज़रिए, जाति के आधार पर ज़ुल्म के जीते हुए अनुभव, संस्थाओं की क्रूरता, हमदर्दी और बेपरवाही को दिखाती है। प्रतीकात्मकता या सिंबॉलिज़्म के जरिये ध्यान से बनाए गए किरदारों और मनोवैज्ञानिक गहराई के ज़रिए, यह फ़िल्म एक समुदाय के दबाव से विरोध की ओर बदलाव को दिखाती है। कर्णन जाति के आधार पर हिंसा, भेदभाव, वर्ग संघर्ष, पहचान और आत्मसन्मान को दमदार तरीके से दिखाते हैं।

'परियेरुम पेरुमल' (2018) इस बहुचर्चित तमिल फिल्म का 'धड़क 2' (2025) यह हिंदी पुनर्निर्माण है। आलोचकों के अनुसार तमिल फिल्म एक निर्विवाद सर्वोत्कृष्ट रचना और बेहतर फिल्म है। यह अपनी कच्ची और यथार्थवादी कहानी के कारण अधिक प्रभावशाली है। इस फ़िल्म का हिंदी पुनर्निर्माण 'धड़क 2', किन्तु मुख्यधारा की बॉलीवुड शैली में है और जाति विरोधी संदेश को कम प्रभावशाली तरीके से प्रस्तुत करती है। 'परियेरुम पेरुमल' प्रामाणिकता के आधार पर दलित संस्कृति और संघर्षों को बहुत गहराई से दिखाती है। तमिल फिल्म का कच्चापन और करुप्पी का चित्रण भावनात्मक स्तर पर दर्शकों को गहराई से प्रभावित करता है। इस तमिल फिल्म में करुप्पी नाम का काला कुत्ता ग्रामीण भारत में हाशिए के समुदायों और दलितों द्वारा सामना की जाने वाली मासूमियत, भेद्यता और प्रणालीगत उत्पीड़न के लिए एक शक्तिशाली रूपक के रूप में कार्य करता है। फिल्म के शुरुआती सीन में, करुप्पी को ऊंची जाति के लोग रेल्वे ट्रैक से बांधकर बेरहमी से मार देते हैं। यह फ़िल्म के दलित नायक के लिए एक चेतावनी है, जिसमें दिखाया गया है कि कैसे दबंग ऊंची जातियां "नीचे के लोगों को उनकी जगह दिखाती हैं" उनके सामान, जानवरों या प्रियजनों पर हमला करके। कुत्ते की बेरहमी से हत्या असल जाति-आधारित हिंसा, जैसे कि 'इज्जत के लिए हत्या' या ऑनर किलिंग, जो अक्सर ग्रामीण इलाकों में होती है, का सीधा, चौंकाने वाला चित्रण है। पूरी फ़िल्म में, करुप्पी को कई बार दिखाया गया है, खासकर जब नायक को बहुत ज़्यादा भेदभाव का सामना करना पड़ता है। वह 'पीटे जा रहे' निचली जाति को दिखाती है, और बाद के एक खास सीन में, उसे नीले रंग में दिखाया गया है, जो दलित पहचान और आंबेडकरवादी आंदोलन के 'नीले' रंग (नीला रंग अक्सर दलित गर्व से जुड़ा होता है) के मेल को दिखाता है। दिग्दर्शक मारी सेल्वराज के अनुसार करुप्पी फिल्म की आत्मा है जो उन लोगों की सच्चाई को दिखाती है जिनके साथ वह बड़े हुए, जिससे वह सिर्फ़ एक पालतू जानवर नहीं, बल्कि दबे-कुचले लोगों की विचारधारा का प्रतीक बन जाती है। इस पृष्ठभूमि में आलोचकों का तर्क है कि 'धड़क 2' जातिगत भेदभाव की क्रूर वास्तविकताओं नजर अंदाज करते हुए रूमानी रिश्ते को प्राथमिकता देती है, जो एक तीखे, निडर या ग़ैरशर्मसार मास्टरपीस को अधिक स्वादिष्ट अतिरंजित या सनसनीखेज पुनर्निमित फ़िल्म में बदल देती है। 'परियेरुम पेरुमल' में जातिगत हिंसा के कच्चे, गंभीर चित्रण को 'धडक 2' में कम कर दिया गया है, जिससे सामाजिक टिप्पणी "मौन और थोड़ी झूठी" लगती है। इन आलोचनाओं के बावजूद, कुछ समीक्षकों ने मुख्यधारा, वाणिज्यिक बॉलीवुड दर्शकों के लिए सामाजिक रूप से जागरूक कहानी लाने के लिए 'धड़क-2' और उसकी निर्देशिका शाज़िया इकबाल की प्रशंसा की है, यह देखते हुए कि यह उद्योग के लिए एक साहसी कदम है, भले ही यह तमिल मूलस्रोत 'परियेरुम पेरुमल' से बेहतर नही है।

2019 की तमिल फिल्म 'असुरन' में जातिगत हिंसा को बहुत ही कच्चे या अपरिष्कृत, क्रूर और क्रमबद्ध या सुनियोजित तरीके से दिखाया गया है। वेत्रिमारन के दिग्दर्शन में बनी इस फिल्म को तमिल सिनेमा में जाति-आधारित उत्पीड़न, ज़मीन पर

IJARSCT
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
ISSN: 2581-9429
Volume 6, Issue 7, June 2026
Impact Factor: 8.2

कब्ज़ा करने और ज़िंदा रहने के लिए ज़रूरी हिंसक बदले की कार्रवाई को बेबाकी से और असलियत के साथ दिखाने के लिए एक मील का पत्थर माना जाता है। फिल्म में जाति के आधार पर होनेवाला उत्पीड़न दिखाया गया है, जैसे लोगों को सिर पर जूते पहनकर चलने के लिए मजबूर करना या उन्हें ऊंची जाति के लोगों के सामने झुकने के लिए मजबूर करना, जो जाति व्यवस्था के अमानवीय पहलू को दिखाता है।

## V. निष्कर्ष

तमिल फिल्म जगत में दलित सिनेमा एक ताकतवर बल के तौर पर उभर रहा है, जो अभिजात वर्ग केंद्रित कहानियों से हटकर हाशिए पर पड़े अधिकारहीन पिछड़ों की कहानियों को केंद्रबिंदु बना रहा है; वो न सिर्फ दबे-कुचले समूहों के संघर्षों और उम्मीदों को दिखाता हैं; बल्कि मुख्यधारा आकर्षण या अपील भी देता हैं, जिससे तमिल सिनेमा में ज़्यादा समावेशिता का रास्ता खोल दिया है। किंतु हिंदी सिनेमा के संदर्भ में वाणिज्यिक सफलता के मद्देनजर सिर्फ 'मसाला मनोरंजन' किस्म की फिल्मों का दबदबा है– और सामाजिक- आर्थिक दृष्टिसे के अधिकार प्रदत्त फिल्म बनाने वाले लोगों ने, हिंदी सिनेमा को एक ऐसा क्षेत्र बना दिया है जिसमें सर्व समावेशी प्रजातांत्रिक पहचान की कमी है। सिर्फ मुनाफा और मनोरंजन के खातिर अभिजात वर्गों के फ़िल्म निर्माताओं ने जाती व्यवस्था से जुड़ी नैतिक बातों को किनारे दिया है। परंपरागत खास अधिकार सामाजिक- आर्थिक रूप से ऊंचे वर्ग के लोगों के कब्ज़े में हैं, जिसके कारण हाशिए पर पड़े समाज को सिनेमा के जादू का सिर्फ शांत दर्शक बना के रखा गया है और उनके मुद्दों को उनके जीवन की जद्दोजहद को नजरअंदाज किया है । इस तरह 'जातिगत वर्चस्व' हिंदी सिनेमा के परिदृश्य को प्रमुखता से आकार देता है जहाँ दलितों, आदिवासियों और दूसरी पिछड़ी जातियों के कलाकारों और फिल्म बनाने वालों की कम मौजूदगी को हिंदी फिल्म उद्योग में कोई खराब चलन नहीं माना जाता। किंतु उसी वक्त तमिल सिनेमा ने प्रचलित जातिव्यवस्था से सबसे अधिक प्रभावित पिछडों के अनुभवों और जीवन को सफलता पूर्वक मुख्यधारा बनाकर उनके मुद्दों के कथन को एक निष्क्रिय चित्रण से सच्चे सक्रिय प्रतिरोध में बदल दिया है।

## संदर्भ सूची

**[1].** Arti Singh and EP Abdul Azeez, Caste in contemporary Bollywood movies: An analysis of the portrayal of characters Asian Journal of Social Science Volume 49, Issue 2, Pages 93-100, June 2021.

**[2].** Harish Wankhede, From the margins to the mainstream: how films are elevating marginalised voices.The Hindu 19th Sept; 2024.

**[3].** Harish Wankhede, Ten years of Sairat and the unfinished story of the Dalit hero Frontline The Hindu, 12th March 2026.

**[4].** Vikrant Kishore, The Caste Blindness of Bollywood NRI Genre Films Senses of Cinema https://www.sensesofcinema.com › author › dr-vikrant-kishore, May 2022.

**[5].** Cinema and Caste: Examining Marginalised Narratives in Film, EPW Engagehttps://www-epw-in.translate.goog/engage/